खण्ड 3
साहित्य

खण्ड 3 साहित्य

इकाई – 14 गीता 12वाँ अध्याय (1 से 10 श्लोक तक)

इकाई – 15 गीता 12वाँ अध्याय (11 से 20 श्लोक तक)

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 14 गीता 12वाँ अध्याय (1 से 10 श्लोक तक)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 गीता 12वाँ अध्याय (1 से 10 श्लोक)
14.3 बोध/ अभ्यास प्रश्न
14.4 सारांश
14.5 शब्दावली
14.6 बोध/ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप : -

- श्रीमद्भगवद्गीता के भक्ति योग के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से आपको स्वयं के व्यक्तित्व के विकास हेतु भी सहायता प्राप्त होगी।
- आप जानेंगे कि श्रीमद्भगवद्गीता में भक्तियोग का क्या महत्त्व है?
- श्लोकों को पढ़ने से उच्चारण कौशल का विकास होगा।
- श्लोकों में आए सन्धि युक्त शब्दों का विच्छेद जानेंगे जिससे आपके व्याकरणात्मक ज्ञान में भी वृद्धि होगी।
- संस्कृत व्याकरण के मूलभूत तत्त्व सन्धि के अतिरिक्त भी गीता के श्लोकों के अध्ययन से आपको समासों, नामरूपों तथा धातुरूपों एवं अन्य प्रत्ययों का भी प्रसंगवश परिचय प्राप्त होगा।

14.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में आपने संस्कृत भाषा-व्याकरण के सामान्य नियम पढ़े थे। प्रस्तुत इकाई में आपको श्रीमद्भगवद्गीता के द्वादश अध्याय के श्लोक पढ़ने हैं, जिससे आप जानेंगे कि श्रीमद्भगवद्गीता के द्वादश अध्याय में भक्तियोग का वर्णन किस प्रकार किया गया है। साथ ही आपको यह भी पता चलेगा कि धातु, प्रत्यय, विभक्ति, समास एवं सन्धि आदि का प्रयोग श्लोक में एवं भाषा में किस प्रकार से

किया जाता है। आपको ध्यानपूर्वक प्रस्तुत इकाई का भी अध्ययन करना है।

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय संस्कृति का वह महनीय ग्रन्थ है जो अपने ज्ञान-विज्ञान के लिए विश्वविख्यात है। श्रीमद्भगवद्गीता में कुल अठारह अध्याय हैं। द्वादश अध्याय भक्तियोग के नाम से जाना जाता है। भक्ति शब्द 'भज् सेवायाम्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर बनता है, फलस्वरूप भक्ति का शाब्दिक अर्थ सेवा अथवा उपासना होना चाहिए। जहाँ तक इसके पारिभाषिक अर्थ का प्रश्न है तो नारद भक्तिसूत्र में भक्ति को ईश्वर विषयक परम अनुरक्ति कहा गया है। इसी प्रकार योग शब्द पाणिनीय व्याकरण के अनुसार "युज्" धातु में भावार्थक "घञ्" प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है । 'युज्' धातु के अर्थ हैं – संयोजन, मेलन, संयमन, कार्यप्रवणता, संयोग एवं समाधि। भक्तियोग का सामान्य अभिप्राय है - भगवान् अथवा किसी दिव्य शक्ति का आराधन। मन, वाणी और कर्म से उसका अनुचिन्तन एवं समस्त भावों का उस में समर्पण। सम्भवतः भक्ति का उदय ज्ञान और कर्म के समुच्चय का प्रतिफलन है । जिस बिन्दु पर ज्ञान और कर्म दोनों मिल जाते हैं, वही भक्तियोग है। श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में भक्त को सर्वश्रेष्ठ योगी कहते हैं।

मय्यावेश्य मनो यो मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमाः स्मृताः ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 12/2)

विवेकचूड़ामणि में **'मोक्ष कारण सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी'** अर्थात् मोक्ष के समस्त कारणों में भक्ति को श्रेष्ठ कहा गया है। ज्ञान, कर्म और भक्ति ये तीनों मार्ग प्रक्रिया की दृष्टि से भिन्न होने पर भी परस्पर अनुपूरक हैं। ज्ञानमार्ग साधक के ज्ञानात्मक पक्ष को दृढ़ करता है एवं कर्ममार्ग संकल्प एवं शारीरिक दृढ़ता का हेतु है। इसी प्रकार भक्तियोग भावनात्मक पक्ष को प्रबल करने का कारण सिद्ध होता है।

इससे पूर्व के अध्यायों में श्रीकृष्ण अर्जुन को साकार एवं निराकार ब्रह्म तथा उसके सर्वव्यापकत्व का वर्णन कर चुके हैं। इसके साथ ही सभी प्रकार के भक्तों और योगियों का विवेचन भी श्रीमद्भगवद्गीता में इससे पूर्व हो चुका है।

14.2 गीता 12वाँ अध्याय (1 से 10 श्लोक)

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि अध्यात्मवादियों की दो श्रेणियाँ हैं – निर्विशेषवादी अर्थात् निराकार उपासक और सगुणवादी अथवा साकार उपासक। प्रथम अध्यात्मवादी अर्थात् निर्विशेषवादी परमात्मा के साकार रूप के प्रति अनुरक्त नहीं होते वे निराकार ब्रह्म को ही श्रेष्ठ मानते हैं। इसके विपरीत जो परमात्मा की प्रत्यक्ष सेवा करते हैं वे सगुणवादी कहलाते हैं। इसी क्रम में अर्जुन के मन में एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि निर्विशेषवादी और सगुणवादी में से कौन श्रेष्ठ है? इसी

जिज्ञासा के उत्तर हेतु वे श्रीकृष्ण से पूछते हैं -

अर्जुन उवाच (अर्जुन कहता है)

श्लोक –

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

अन्वय – ये भक्ताः एवं सततयुक्ताः त्वां पर्युपासते च ये अपि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः?

पदार्थ – ये = जो, भक्ताः = भक्तगण, एवं = इस प्रकार, सततयुक्ताः = निरन्तर लगे हुए, त्वां = तुमको, पर्युपासते = अच्छी प्रकार से पूजते हैं, च = और, ये = जो, अपि = पुनः, अक्षरम् = अविनाशी, अव्यक्तं = अप्रकट को (ब्रह्म को पूजते हैं), तेषां = उनमें से, के = कौन, योगवित्तमाः = योगविद्या में अत्यन्त निपुण हैं।

अर्थ – अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछते हैं कि जो भक्त आपकी (अर्थात् सगुण ब्रह्म की) निरन्तर योगपरायण होते हुए भली प्रकार उपासना करते हैं एवं जो भक्त अविनाशी एवं अव्यक्त (अर्थात् निराकार) ब्रह्म की उपासना करते हैं, इन दोनों में से कौन अधिक सिद्ध है?

व्याख्या – श्रीकृष्ण ने पूर्व में ही अर्जुन को सगुण एवं निर्गुण भक्ति की व्यापकता को स्पष्ट कर दिया है। द्वादश अध्याय से पूर्व के अध्यायों के अध्ययन से एक बात स्पष्ट होती है कि सामान्य रूप से अध्यात्मवादियों की दो विचारधाराएँ हमें दिखाई देती हैं प्रथम विचारधारा निर्विशेषवादी अथवा ईश्वर के निराकार स्वरूप की उपासना करने वालों की है। द्वितीय विचारधारा सगुणवादी विचारधारा है जो ईश्वर के साकार रूप की उपासना पर बल देती है। अर्जुन यह निश्चित कर लेना चाहते हैं कि निराकार एवं सगुण उपासना में से कौन सी विधि सर्वाधिक युक्त है। क्योंकि अर्जुन श्रीकृष्ण के सगुण रूप के प्रति अनुरक्त हैं वह निराकार ब्रह्म के प्रति आसक्ति नहीं रखते अतः अर्जुन अपनी स्थिति भी स्पष्ट कर लेना चाहते हैं कि ईश्वर की साकार उपासना अधिक युक्त है अथवा निराकार उपासना। इसीलिए वह श्रीकृष्ण से स्पष्ट कर लेना चाहते हैं कि जो भक्त निरन्तर सेवा में लगे रहते हैं वे अधिक सिद्ध हैं अथवा जो अव्यक्त निर्विशेष ब्रह्म की उपासना करते हैं वे अधिक श्रेष्ठ हैं?

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

भक्ताः – भक्तः शब्द पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन

भक्तास्त्वां – भक्ताः + त्वां = भक्तास्त्वां, विसर्ग सन्धि

त्वां – युष्मद् शब्द, पुँल्लिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन

पर्युपासते – परि + उपासते = पर्युपासते (यण् सन्धि) **'परि'** उपसर्ग + **'उप'** उपसर्ग + **'आस्'** धातु, आत्मनेपद लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन

चाप्यक्षरमव्यक्तं – च+ अपि (दीर्घ सन्धि) = चापि+अक्षरम् (यण् सन्धि) = चाप्यक्षरम् +अव्यक्तं = चाप्यक्षरमव्यक्तं (संयोग)

तेषां – तत् पुंल्लिंग शब्द, पुँल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन

सततयुक्ता – सततं युक्ता सततयुक्ता – सुप् समास

अव्यक्तम् – न व्यक्तम् इति अव्यक्तम् – नञ् समास

योगवित्तमाः – योगं विदन्ति इति योगविदः तेषु श्रेष्ठाः योगवित्तमाः, सर्वे इमे योगविदः तेषु योगवित्सु एतेन अतिशयेन योगविदः योगवित्तमाः। योग + विद्+ क्विप् प्रत्यय = योगविदः, पुँल्लिंग, प्रथमा एकवचन। योगविद + तमप् = योगवित्तमः, बहुवचन में योगवित्तमाः

नोट – गीता के द्वादश अध्याय में अनुष्टुप् छन्द है। अनुष्टुप् छन्द् का लक्षण इस प्रकार है –

श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमदीर्घमन्ययोः ॥

अनुष्टुप छन्द के चार पाद होते हैं। प्रत्येक पाद में आठ वर्ण होते हैं। छन्द के प्रत्येक चरण का छठा वर्ण गुरु होता है और पंचम लघु होता है। प्रथम और तृतीय पाद का सातवाँ अक्षर गुरु होता है तथा दूसरे और चौथे पाद का सप्तम अक्षर लघु होता है। इस प्रकार पादों में सप्तम अक्षर क्रमशः गुरु-लघु होता रहता है, अर्थात् प्रथम पाद में गुरु द्वितीय में लघु, तृतीय पाद में गुरु चतुर्थ पाद में लघु।

श्रीभगवानुवाच (श्रीकृष्ण कहते हैं)

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

अन्वय – ये मनः मयि आवेश्य नित्ययुक्ताः परया श्रद्धया उपेताः माम् उपासते ते मे युक्ततमाः मताः।

पदार्थ – ये = जो, मनः = मन को, मयि = मुझमें, आवेश्य = निविष्ट करके, नित्ययुक्ताः = सदा लगे हुए, परया = अतिशय, श्रद्धया = श्रद्धा से, उपेताः = युक्त हुए , माम् = मुझको, उपासते = पूजते हैं, ते = वे, मे = मेरे द्वारा, युक्ततमाः = श्रेष्ठतम योगी, मताः = माने जाते हैं।

अर्थ – श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं जो लोग अपने मन को मेरे में एकाग्र करते हैं और अत्यन्त श्रद्धा से समन्वित होकर मेरी उपासना में निरन्तर लगे रहते हैं, ऐसे भक्तों को मैं श्रेष्ठ योगी मानता हूँ।

व्याख्या – अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहते हैं कि जो भी व्यक्ति अपने मन को मेरे में एकाग्र करते हुए निरन्तर श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करता है उसे ही परमसिद्ध मानना चाहिए। ऐसे व्यक्ति के समस्त कार्य मेरी अर्थात् परमेश्वर की भावना से ही किए जाते हैं। ऐसे व्यक्ति ही अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होकर परमेश्वर की अर्चना करते हैं उन्हें मैं योगियों में भी अति योगी अर्थात् अति श्रेष्ठ समझता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

मय्यावेश्य – मयि + आवेश्य = मय्यावेश्य (यण् सन्धि)। मयि - अस्मद् शब्द, पुँल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन। आवेश्य – आङ् उपसर्गपूर्वक विश् धातु + ल्यप् प्रत्यय।

मनः – मनस् शब्द नपुंसकलिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

मनो – मनः शब्द में हशि च सूत्र से उत्व होकर आद्गुण से गुण होकर मनो शब्द।

माम् – अस्मद् शब्द, पुँल्लिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

श्रद्धया – श्रद्धा शब्द स्त्रीलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

परयोपेतास्ते – परया + उपेताः (गुण सन्धि) = परयोपेताः + ते = परयोपेतास्ते, विसर्ग सन्धि।

परया – परा शब्द, स्त्रीलिंग तृतीया विभक्ति एकवचन।

उपेताः – 'उप' उपसर्ग 'इण्' धातु + क्त प्रत्यय = उपेतः पुल्लिंग प्रथमा, बहुवचन में उपेताः।

मे – अस्मद् शब्द, पुँल्लिंग, षष्ठी विभक्ति एकवचन का वैकल्पिक रूप।

नित्ययुक्ता – नित्यं युक्ता नित्ययुक्ताः, सुप् समास।

युक्ततमा – अतिशयेन युक्ता युक्ततमा, युक्त+ तमप् प्रत्यय।

मताः – मन् धातु क्त प्रत्यय से मतः शब्द, पुंल्लिंग प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।

सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३ ॥

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४ ॥

अन्वय – तु ये इन्द्रियग्रामं सन्नियम्य सर्वत्र समबुद्धयः अनिर्देश्यम् अव्यक्तं सर्वत्रगम् अचिन्त्यं कूटस्थम् अचलं ध्रुवं च अक्षरं पर्युपासते सर्वभूतहिते रताः ते माम् एव प्राप्नुवन्ति।

पदार्थ – तु = और, ये = जो पुरुष, इन्द्रियग्रामं = इन्द्रियों के समुदाय को, सन्नियम्य = अच्छी प्रकार से वश में करके, सर्वत्र = सभी जगह अर्थात् सर्वव्यापी, समबुद्धयः = समान बुद्धि वाले योगी, अनिर्देश्यम् = निर्देश कर सकने के अयोग्य, अव्यक्तं = निराकार, सर्वत्रगम् = सर्वव्यापी, अचिन्त्यम् = अचिन्तनीय अर्थात् मन बुद्धि से परे, कूटस्थम् = सदा एकरस रहने वाले, अचलम् = अचल, ध्रुवम् = नित्य, च = और, अक्षरम् = अविनाशी (ब्रह्म) को, पर्युपासते = भली प्रकार से पूजते हैं, सर्वभूतहिते = सभी प्राणियों के हित में, रताः = लगे हुए, ते = वे, माम् = मुझको, एव = ही, प्राप्नुवन्ति= प्राप्त करते हैं।

अर्थ – जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में करके सभी के प्रति समान बुद्धि रखता हुआ उस अव्यक्त की उपासना करते हैं, जो वागादि इन्द्रियों के ज्ञान से परे है, सर्वव्यापी है, अकल्पनीय है, अपरिवर्तनशील है, अचल एवं ध्रुव है, वह समस्त प्राणियों के कल्याण में संलग्न रहकर अन्ततः परब्रह्म को ही प्राप्त करता है।

व्याख्या – कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कह रहे हैं कि मुझ अव्यक्त की श्रद्धापूर्वक समदर्शी होकर उपासना करने वाले ही मुझे प्राप्त करते हैं। सभी प्राणियों में समान भाव से सबके हित में लगे हुए निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वालों की बुद्धि भेदात्मक नहीं रहती। सारे संसार में एक ही परमेश्वर की सत्ता है उससे भिन्न कोई भी नहीं है। अतः निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति, मेरी ही प्राप्ति है। मैं और निर्गुण ब्रह्म भिन्न-भिन्न नहीं हैं। उदाहरण के लिए हम इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि मानो परब्रह्म मिट्टी के समान है जिससे अलग-अलग वस्तुओं का निर्माण हुआ है जैसे – घट, सुराही, सकोरा आदि। मिट्टी के रूप में तो वे सब एक हैं परन्तु आकृति से वे भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। इसी प्रकार परब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों हैं। सगुण ईश्वर निराकार ब्रह्म से भिन्न नहीं है। यह अवश्य है कि परब्रह्म का निर्गुण स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म एवं अव्यक्त होने के कारण सामान्य व्यक्ति के लिए निराकार उपासना की यह विधि कठिन जान पड़ती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

ये – यत् शब्द पुंल्लिंग प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

त्वक्षर – तु+अक्षर = त्वक्षर, यण् सन्धि।

सर्वत्रगम् – सर्वत्र गच्छतीति सर्वत्रगः। गम् + डः प्रत्यय सर्वत्रगः तं सर्वत्रगम्।

प्राप्नुवन्ति – प्र उपसर्ग आप्लृ धातु से श्नु प्रत्यय (श्नु विकरण), लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

मामेव – माम्+एव = मामेव (वर्णसंयोग) ।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामम् – सम् उपसर्ग + नि उपसर्ग + यम् धातु + ल्यप् प्रत्यय = सन्नियम्य + इन्द्रियग्रामं = सन्नियम्येन्द्रियग्रामं, गुणसन्धि।

इन्द्रियग्रामम् – इन्द्रियाणां ग्रामः, तम् इन्द्रियग्रामं, षष्ठी तत्पुरुष।

कूटस्थम् – कूटे तिष्ठति इति कूटस्थः तं कूटस्थं, कूट + स्था + क प्रत्यय।

ध्रुवम् – ध्रुवं शब्द नपुंसकलिंग द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

अक्षरम् – न क्षरम् इति अक्षरम्, नञ् समास।

अनिर्देश्यम् – न निर्देश्यम् इति अनिर्देश्यम्, नञ् समास।

अचिन्त्यम् – न चिन्त्यम् इति अचिन्त्यम्, नञ् समास।

अचलम् – न चलम् इति अचलम्, नञ् समास।

समबुद्धयः – समा बुद्धिः येषां ते समबुद्धयः, बहुव्रीहि समास।

सर्वभूतहिते – सर्वभूतेभ्यः हितं सर्वभूतहितम्, तस्मिन् सर्वभूतहिते – चतुर्थी तत्पुरुष।

सर्वत्र – अव्यय पद।

बुद्धयः – बुध् धातु क्तिन् प्रत्यय बुद्धिः स्त्रीलिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

ते – तद् शब्द पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

मामेव = माम् + एव = मामेव (वर्णसंयोग) अस्मद् शब्द, पुँल्लिंग द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

एव – अव्यय पद।

रताः – रम् धातु से क्त प्रत्यय पुँल्लिंग प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

अन्वय – अव्यक्तासक्तचेतसां तेषां क्लेशः अधिकतरः हि देहवद्भिः अव्यक्ता गतिः दुःखम् अवाप्यते।

पदार्थ – अव्यक्तासक्तचेतसाम् = अव्यक्त ब्रह्म में जिनका चित्त लगा हुआ है, तेषाम् = उनका, क्लेशः = कष्ट अथवा परिश्रम, अधिकतरः = अपेक्षाकृत अधिक है, हि = क्योंकि, देहवद्भिः = देहाभिमानियों के द्वारा, अव्यक्ता = अव्यक्तविषयक, गतिः

= गति, दुःखम् = दुःखपूर्वक, अवाप्यते = प्राप्त की जाती है।

अर्थ – ऐसे लोग जिनका मन परमशक्ति के अव्यक्त, निराकार स्वरूप के प्रति आसक्ति रखता है, उनको अधिक क्लेश होता है। इसका कारण यह है कि देहधारियों को अव्यक्त ब्रह्म की प्राप्ति कठिनता से ही होती है।

व्याख्या – ईश्वर की निराकार उपासना करने वाले अध्यात्मवादी ज्ञानयोगी कहलाते हैं। यद्यपि ज्ञान के माध्यम से वे परब्रह्म की प्राप्ति कर लेते हैं परन्तु यह मार्ग अत्यन्त कठिन है। जबकि भक्ति के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग अत्यन्त सरल है। भक्ति मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति के मन में परब्रह्म का एक आकार होता है अतः वह सरलता से ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। जबकि ज्ञान मार्ग से ईश्वर को प्राप्त करने हेतु उद्यत देहधारी के लिए यह चिन्तन कर पाना किञ्चित् कठिन होता है कि वह शरीर नहीं है। निराकार ब्रह्म का अभ्यास कष्ट का कारण बन जाता है क्योंकि स्वयं वह शरीर धारण करते हुए निर्गुण की उपासना कर रहा है अतः वह देहधारण करने वाले विचार को नहीं त्याग पाता। ऐसा व्यक्ति अभ्यास के समय निराकार ब्रह्म की प्राप्ति में कठिनाई में पड़ जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

क्लेशः –क्लिशु धातु + घञ् प्रत्यय (भाव में) क्लेशः पुँल्लिंग प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

अधिकतरः – अतिशयेन अधिकः अधिकतरः, अधिक+तरप् प्रत्यय, पुँल्लिंग प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

तेषाम् – तद् पुँल्लिंग षष्ठी विभक्ति, बहुवचन।

अव्यक्तासक्तचेतसः – अव्यक्ते आसक्तं चेतः येषां ते अव्यक्तासक्तचेतसः, तेषाम् चेतसाम् बहुव्रीहि समास पुँल्लिंग, षष्ठी विभक्ति बहुवचन।

अव्यक्ता – न व्यक्ता इति अव्यक्ता नञ् तत्पुरुष समास, प्रथमा बहुवचन

हि – अव्यय शब्द अवधारण अर्थ में

गतिर्दुःखम् – गम् + क्तिन् प्रत्यय = गतिः। स्त्रीलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

गतिः + दुःखं = गतिर्दुःखं, विसर्ग सन्धि।

देहवद्भिः – देहः एषाम् एषु वा अस्तीति देहवन्तः, तैः देहवद्भिः देह+ मतुप् = देहवत् देहवद्भिः पुल्लिंग तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

अवाप्यते – अव उपसर्ग आप् धातु + यक् (कर्मवाच्य में)+क्त, आत्मनेपद, प्रथमा पुरुष, एकवचन।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।

अनन्येनैवयोगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥ ७॥

अन्वय – तु ये सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः अनन्येन योगेन माम् एव ध्यायन्तः उपासते पार्थ! अहं नचिरात् मयि आवेशितचेतसां तेषां मृत्युसंसारसागरात् समुद्धर्ता भवामि।

पदार्थ – तु = परन्तु, ये = जो, सर्वाणि = सम्पूर्ण, कर्माणि = कर्मों को, मयि = मेरे में, संन्यस्य = अर्पण करके, मत्पराः = मेरे परायण हुए भक्तजन, अनन्येन = अनन्य, योगेन = ध्यान योग से, माम् = मुझ सगुणरूप परमेश्वर को, एव = ही, ध्यायन्तः = निरन्तर चिन्तन करते हुए, उपासते = भजते हैं, पार्थ! = हे पृथापुत्र (अर्जुन), अहम् = मैं, नचिरात् = शीघ्र ही, मयि = मेरे में, आवेशितचेतसाम् = चित्त को लगाने वाले भक्तों का, तेषाम् = उन, मृत्युसंसारसागरात् = मृत्युरूप संसार समुद्र से, समुद्धर्ता = उद्धार करने वाला, भवामि = होता हूँ।

अर्थ – जो भक्त अपने समस्त कार्यों को मुझमें अर्पण करता हुआ बिना विचलित हुए अर्थात् ध्यान को भटकाए बिना मेरी भक्ति करते हुए उपासना करते हैं, अपने चित्त को मुझ पर स्थिर करके निरन्तर मेरा ध्यान करते हैं, हे अर्जुन! उन भक्तों के लिए मैं इस मृत्युरूपी संसार सागर से शीघ्र ही उद्धार करने वाला होता हूँ।

व्याख्या – श्रीकृष्ण अर्जुन को ज्ञानमार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्ग की सरलता के विषय में बता रहे हैं। व्यक्ति को पूर्ण भक्त बनना चाहिए व्यक्ति जो भी कार्य करे वह स्वयं को कृष्ण में पूर्णरूप से एकाग्र करके ही करे। भक्ति का आदर्श भी यही है कि ईश्वर को ही सब कुछ अर्पित करता हुआ भक्त अपने कार्य को करता रहे। ऐसे भक्त को भगवान् जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त कर देते हैं। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रायः हम यह समझते हैं कि जन्म और मृत्यु एक दूसरे के विपरीतार्थक हैं। जन्म का विपरीत मृत्यु है और मृत्यु का विपरीत जन्म है जबकि ऐसा नहीं है। जन्म और मृत्यु तो एक ही साथ चलते हैं। ये एक सिक्के के दो पहलू हैं। मृत्यु का विपरीत जन्म नहीं अमृत है, मोक्ष है। जिसे हम जीवन कहते हैं शास्त्रीय भाषा में उसे संसार कहा जाता है। गीता में यहाँ मृत्यु को संसार कहा जा रहा है। मृत्यु से छुटकारा पाने का अर्थ है संसार से छुटकारा पाना। इस जन्म-मृत्यु से ईश्वर ही सदैव के लिए मुक्ति दिला सकते हैं। अतः अपने मन को कृष्ण पर एकाग्र करके सदैव ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से व्यक्ति को अपने जीवन के शुभ-अशुभ किसी भी कर्म पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती वह जो कुछ भी करता

है, वह कृष्ण भक्ति में कृष्ण के लिए करता है। उसके समस्त कर्मों के फल का उत्तरदायित्व कृष्ण के ऊपर ही होता है। उसे बस यह ध्यान रखना है कि अपने चित्त को पूर्ण रूप से कृष्ण के प्रति ही समर्पित कर दे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

ये – यत् शब्द पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

तु – अव्यय पद।

सर्वाणि – सर्व शब्द नपुंसकलिंग में द्वितीया विभक्ति, बहुवचन।

कर्माणि – कर्मन् शब्द नपुंसकलिंग में द्वितीया विभक्ति,बहुवचन।

मयि – अस्मद् शब्द सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

संन्यस्य – सम्+नि+अस्+ल्यप् = संन्यस्य। सम्+नि = सन्नि (अनुस्वार सन्धि) + अस्य संन्यस्य (यण् सन्धि) ।

मत्पराः – अस्मत् सप्तमी एकवचन मयि पराः मत्पराः सप्तमी विभक्ति,तत्पुरुष।

अनन्येन – न विद्यते अन्यः यस्मिन् सः अनन्यः तेन, अनन्येन, पुँल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

अनन्येनैव –अनन्येन + एव = अनन्येनैव (वृद्धि सन्धि) ।

योगेन – युज् धातु+घञ् = योग पुँल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

ध्यायन्त –ध्यै+शतृ प्रत्यय, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति,बहुवचन।

तेषाम् – तत् शब्द , पुँल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन।

समुद्धर्ता – समुत् + हर्ता = समुद्धर्ता (व्यञ्जन सन्धि)।

मृत्युसंसारसागरात् – मृत्युः एव संसारसागरः मृत्युसंसारसागरः, तस्मात्, **मृत्युसंसारसागरात्** कर्मधारय समास।

भवामि –भू धातु लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

नचिरात् – न चिरात् इति नचिरात्, नञ् समास।

पार्थ – पृथायाः अपत्यम् पुमान् पार्थ, पुँल्लिंग सम्बोधन एकवचन। पृथा + अण् प्रत्यय।

मय्यावेशित० – मयि + आवेशित (यण् सन्धि) = मय्यावेशित।

आवेशितचेतसाम् – आवेशितं चेतः यैः ते आवेशितचेतसः, तेषाम्, आवेशितचेतसाम् बहुव्रीहि समास।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

अन्वय – मयि एव मनः आधत्स्व। मयि बुद्धिं निवेशय। अतः ऊर्ध्वं मयि एव निवसिष्यसि, न संशयः।

पदार्थ – मयि = मुझ में, एव = ही, मनः = मन को, आधत्स्व = स्थापित करो। मयि = मुझ में, बुद्धिम् = बुद्धि को, निवेशय = लगा, अतः ऊर्ध्वम् = इसके बाद मयि एव = मुझ में ही, निवसिष्यसि = निवास करेगा अर्थात् मुझे ही प्राप्त होगा, न संशयः = सन्देह नहीं है।

अर्थ – मुझ परब्रह्म में ही अपने मन को स्थापित करो और अपनी समस्त बुद्धि को मुझमें ही लगाओ। इसके अनन्तर तुम मुझ में ही निवास करोगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

व्याख्या – कृष्ण ने इस श्लोक में मन के साथ बुद्धि को भी ईश्वर में लगाने का निर्देश किया है। गीता के अनुसार पहले ईश्वर में मन को लगाओ। परब्रह्म के भाव से ही मन को भावित करो। ऐसा करने से समस्त संसार ही ईश्वरमय दिखाई देने लगेगा। तत्पश्चात् बुद्धि को भी परमात्मा में लगाओ। ऐसा करने से भगवान के साथ भक्त का प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। वह इस संसार में रहते हुए भी कृष्ण में ही वास करता है और मृत्यु के पश्चात् वह सदैव के लिए कृष्ण में ही लीन हो जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

मय्येव – मयि (अस्मद् शब्द सप्तमी एकवचन) + एव = मय्येव यण् सन्धि।

मन – मनस् शब्द नपुंसकलिंग द्वितीया एकवचन।

आधत्स्व – आङ् + धा धातु लोट् लकार मध्यम पुरुष, एकवचन।

बुद्धिम् – बुद्धि शब्द स्त्रीलिंग द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

निवेशय – नि+विश् लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन।

निवसिष्यसि – नि+वस् धातु लृट् लकार मध्यम पुरुष, एकवचन (आर्ष प्रयोग) ।

अत = अस्मात् अस्मद् शब्द पुँल्लिंग पञ्चमी एकवचन। इदम् + तसिल् प्रत्यय पञ्चमी अर्थ में = अतः।

संशयः – सम्+ शीङ् धातु +अच् प्रत्यय।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।

अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥९॥

अन्वय – धनञ्जय! अथ मयि चित्तं स्थिरं समाधातुं न शक्नोषि ततः अभ्यासयोगेन

माम् आप्तुम् इच्छ।

पदार्थ – धनञ्जय! = सम्पत्ति के विजेता हे अर्जुन!, अथ = यदि, मयि = मुझ में, चित्तम् = मन को, स्थिरम् = अचल, समाधातुम् = स्थापित करने में, न शक्नोषि = समर्थ नहीं हो, ततः = तो, अभ्यासयोगेन = अभ्यासरूप योग के द्वारा, माम् = मुझ को, आप्तुम् = प्राप्त करने की, इच्छ = इच्छा कर।

अर्थ – हे धनञ्जय ! यदि तुम अपने चित्त को अविचल रूप से मुझमें अच्छी प्रकार से स्थापित नहीं कर सकते हो तो तुम अभ्यासयोग के द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न करो।

व्याख्या – यहाँ कृष्ण ऐसे भक्तों के लिए सरल उपाय बता रहे हैं जो सगुण ब्रह्म में अपने चित्त को स्थिर और स्थापित नहीं कर पाते। वस्तुतः संसार में सब व्यक्तियों का स्वभाव एक जैसा नहीं होता। हम कक्षा में भी देखते हैं कि पचास छात्रों की कक्षा में एक ही अध्यापक के द्वारा पढ़ाए जाने पर कुछ बच्चों को पढ़ाया गया विषय अच्छे से सरलतया स्पष्ट होता है तो कुछ बच्चे सामान्य रूप से उसे समझते हैं जबकि कतिपय छात्र-छात्राओं को वह विषय बड़ा कठिन लगता है। अतः सभी के लिए एक समान साधन निर्धारित करना न तो व्यावहारिक है और न ही उपयोगी। क्योंकि बुद्धि और मन को स्थिर एवं अटल कर पाना हर एक साधक के लिए स्वाभाविक रूप से सम्भव नहीं हो सकता अतः निरन्तर अभ्यास के द्वारा साधक परब्रह्म को प्राप्त कर सकते हैं। इच्छा करना मन का वास्तविक गुण है। वह अपनी तृप्ति अर्थात् अभिलाषा पूर्ति में ही लगा रहता है उसे भक्तियोग के अभ्यास से ईश्वर की ओर लगाना ही अभ्यास है। ऐसा करने से वह स्वयं स्थिर हो जाएगा क्योंकि मन को इच्छा वाला भोग अर्थात् भगवद्प्राप्तिरूपी भोग प्राप्त हो जाएगा। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि ये आठ अष्टांग अभ्यास योग के साधन हैं जिनके माध्यम से साधक मन एवं बुद्धि को संसार के विषयों से हटाकर एकमात्र कृष्ण पर ही एकाग्र कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सुविज्ञ गुरु के मार्गदर्शन में भी व्यक्ति भक्तियोग के विधि-विधानों का अभ्यास कर सकता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अथ – अव्यय पद।

चित्तम् – चिति धातु +क्त प्रत्यय चित्तं। नपुंसकलिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

समाधातुम् – सम् + आङ्+ धा+ तुमुन् = समाधातुम्।

शक्नोषि – शक्लृ शतौ लट् लकार मध्यम पुरुष, एकवचन।

स्थिरम् – स्था + किरच् प्रत्यय = स्थिरम्, नपुंसकलिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

ततो – तस्मात् तद् शब्द पुँल्लिंग, पञ्चमी एकवचन तद् + तसिल् = ततः

मामिच्छाप्तुं – माम् + इच्छाप्तुम् = मामिच्छाप्तुं, (वर्णसंयोग) ।

इच्छ + आप्तुम् = इच्छाप्तुं दीर्घ सन्धि।

धनंजय – धनं जितवान् इति धनञ्जयः जि धातु + खच् प्रत्यय।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।

मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१० ॥

अन्वय – अभ्यासे अपि असमर्थः असि मत्कर्मपरमः भव। मदर्थ कर्माणि कुर्वन् अपि सिद्धिम् अवाप्स्यसि।

पदार्थ – अभ्यासे = अभ्यास में, अपि = भी, असमर्थः = असमर्थ, असि = हो, मत्कर्मपरमः = मेरे लिए कर्म करना ही जिसके लिए प्रधान है, भव = हो, मदर्थ = मेरे लिए, कर्माणि = कर्मों को, कुर्वन् = करते हुए, अपि = भी, सिद्धिम् = मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को, अवाप्स्यसि = प्राप्त होगे।

अर्थ – यदि तुम भक्तियोग के नियमों का विधि-विधान से पालन अथवा अभ्यास नहीं कर सकते तो मेरे लिए किए जाने वले कर्मों को ही प्रधान मानो, क्योंकि मेरे लिए कर्म करते हुए भी तुम पूर्ण सिद्धि की प्राप्ति कर लोगे।

व्याख्या – कृष्ण पूर्व में ही बता चुके हैं कि भली प्रकार से किया गया कर्म ही यज्ञ है। यदि कोई व्यक्ति अथवा भक्त भक्तियोग के विधि-विधानों का अभ्यास नहीं कर पाता तो भी वह परब्रह्म के प्रति कर्म करके पूर्णावस्था को प्राप्त कर सकता है। कर्म के विभिन्न क्षेत्र हैं। व्यक्ति को ऐसे कर्मों में रुचि लेनी चाहिए जो ईश्वर प्राप्ति अथवा ईश्वर से जुड़े हुए हों। जिस प्रकार हमारे बिना चाहे ही हमारी पलकें अपने आप गिरती-उठती रहती हैं तथा कान बिना चाहे भी कटु से कटु वचन सुनते रहते हैं ऐसे ही हम अन्य कार्यों को अपना क्यों माने। जिसकी प्रेरणा से पलकों और कानों का उक्त कार्य होता रहता है तो समस्त कार्यों को भी उसी परब्रह्म का कारण क्यों न मानें। अभ्यास में स्थिर न होने की स्थिति में व्यक्ति को इन्द्रियों की ऊपर कही गयी परवशता की ओर ध्यान देकर एकमात्र परमेश्वर की ही सत्ता में विश्वास करते हुए निष्क्रिय भाव से सारे कर्मों को परमात्मा के लिए समर्पण बुद्धि से करना चाहिए इससे भी अभीष्ट की सिद्धि हो सकती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि – अभ्यासे + अपि = अभ्यासेऽपि (पूर्वरूप सन्धि) + असमर्थः = अभ्यासेऽप्यसमर्थः (यण् सन्धि) + असि = अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि (पूर्वरूप सन्धि)।

मत्कर्मपरमः – मह्यम् कर्माणि मत्कर्माणि, चतुर्थी तत्पुरुष। मत्कर्माणि एव परमाणि यस्य सः मत्कर्मपरमः, बहुव्रीहि।

भव – भू धातु लोट् लकार मध्यम पुरुष, एकवचन।

असमर्थः – न समर्थः इति असमर्थः, नञ् समास।

मदर्थम् – मह्यम् इदं मदर्थम्, चतुर्थी तत्पुरुष।

अपि – अव्ययपद।

कुर्वन् – कृ धातु + शतृ प्रत्यय पुंल्लिंग, प्रथमा विभक्ति,एकवचन।

सिद्धिम् – सिद्धिः शब्द स्त्रीलिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

अवाप्स्यसि – अव+आप्लृ व्याप्तौ धातु लृट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन।

14.3 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. अर्जुन ने कृष्ण से क्या प्रश्न किया ?

   (क) सगुण और निर्गुण उपासना करने वालों में से कौन श्रेष्ठ है।

   (ख) इस युद्ध में किसकी विजय होगी?

   (ग) निर्गुण उपासना का फल शीघ्र कैसे मिलता है।

   (घ) साकार और निराकार के अतिरिक्त मार्ग सिद्ध मार्ग है।

2. गीता के बारहवें अध्याय का आरम्भ किसकी उक्ति से होता है?

   (क) कृष्ण

   (ख) संजय

   (ग) अर्जुन

   (घ) भगवान

3. तेषां शब्दरूप बनता है –

   (क) तत् शब्द प्रथमा बहुवचन

(ख) तत् शब्द षष्ठी बहुवचन

(ग) तेष शब्द सप्तमी एकवचन

(घ) एतद् शब्द तृतीया एकवचन

4. त्वक्षर में सन्धि क्या है-

(क) अयादि सन्धि

(ख) दीर्घ सन्धि

(ग) गुण सन्धि

(घ) यण् सन्धि

5. श्रीकृष्ण ने भक्त के लिए कौन सा मार्ग सरल बताया है?

(क) कर्मफलों का भोग

(ख) कर्मफलों का त्याग

(ग) निर्गुण उपासना

(घ) मोह में आसक्ति

6. भक्त को जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में किस प्रकार का भाव रखना चाहिए?

(क) समभाव

(ख) विषम भाव

(ग) द्वेष भाव

(घ) आसक्तिभाव

7. भक्ति शब्द में धातु क्या है?

(क) भक्त धातु

(ख) भ धातु

(ग) भज् धातु

(घ) भक्तिन् धातु

8. योग शब्द में क्या धातु है?

(क) युक्त धातु

(ख) युज् धातु

(ग) युस् धातु

(घ) योग धातु

9. जो भक्त अपने चित्त को ईश्वर में स्थिर कर निरन्तर ध्यान करता है उसके लिए ईश्वर क्या करते हैं?

(क) जन्म-मृत्यु के भवसागर से पार।

(ख) स्वर्ग प्रदान करते हैं।

(ग) उसे राजा बना देते हैं।

(घ) सांसारिक भोगों को उपलब्ध करवाते हैं।

सत्य/असत्य निर्धारण

1. भक्ति मार्ग ज्ञान मार्ग से सरल है। (सत्य/असत्य)
2. मन को स्थिर कर पूर्णरूप से श्रद्धायुक्त होकर भक्ति में रत रहने वाले अधम योगी माने जाते हैं। (सत्य/असत्य)
3. परमात्मा की सगुण उपासना करने वाले कष्ट से ईश्वर को प्राप्त करते हैं। (सत्य/असत्य)
4. निर्गुण भक्त सरलता से ईश्वर को प्राप्त कर लेते हैं। (सत्य/असत्य)
5. कर्मों का अर्पण करने वाला व्यक्ति ध्यान नहीं लगा सकता। (सत्य/असत्य)
6. मन एवं बुद्धि को परमात्मा में स्थिर करने वाले का वास ईश्वर में हो जाता है। (सत्य/असत्य)
7. मताः शब्द प्रथमा विभक्ति द्विवचन का रूप है। (सत्य/असत्य)

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ईश्वर प्राप्ति का सरल मार्ग क्या है?
2. गीता के द्वादश अध्याय का नाम क्या है?
3. धनञ्जय किसका नाम है?
4. मय्यावेश्य पद का सन्धि-विच्छेद कीजिए।
5. मृत्युसंसारसागरात् में कौन सी विभक्ति है?

रिक्तस्थानों की पूर्ति की कीजिए

1. अथ चित्तं ..... न शक्नोषि मयि स्थिरम्।

2. ..... कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि।
3. ईश्वर के ..... रूप की उपासना करने वाला भक्त सरलता से ईश्वर को प्राप्त करता है।
4. व्यक्त देहधारियों के लिए ..... की उपासना का मार्ग कठिनता से सिद्ध होता है।
5. परब्रह्म की प्राप्ति के लिए इन्द्रियों को ..... में करना परमावश्यक है।
6. योग शब्द में युज् धातु से..... प्रत्यय होता है।
7. श्रद्धया शब्द तृतीया विभक्ति .....वचन का रूप है।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ईश्वर की निर्गुण भक्ति में किस प्रकार से कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।
2. ईश्वर प्राप्ति के लिए भक्त को किस प्रकार से कार्य करने चाहिए?

14.4 सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता के द्वादश अध्याय में भक्ति योग के विषय में बताया गया है। उक्त अध्याय अर्जुन की जिज्ञासा के साथ आरम्भ होता है। अर्जुन श्रीकृष्ण से जानना चाहते हैं कि ईश्वर की सगुण उपासना अधिक उचित है या निराकार रूप में ईश्वर की उपासना करना अधिक उचित है। इन दोनों प्रकार के उपासकों अथवा योगियों में से किसे अधिक पूर्णसिद्ध योगी माना जाए। श्रीकृष्ण अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बताते हैं कि जो भक्त मेरे सगुण रूप के प्रति ध्यान लगाता हुआ श्रद्धापूर्वक पूजा करता है उसे योग में परम सिद्ध मानना चाहिए। वस्तुतः परब्रह्म की उपासना चाहे सगुण रूप में की जाए या निर्गुण रूप में, दोनों ही स्थितियों में साधक ईश्वर को ही प्राप्त करता है, परन्तु भक्ति का मार्ग सभी के लिए सुलभ है। वस्तुतः गीता का भक्ति योग मानव के संवेगात्मक पक्ष को दृढ़ करता है। ज्ञान एवं कर्म से भक्ति भिन्न है। भक्ति शब्द 'भज्' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है सेवा करना। ज्ञान मार्ग एवं कर्म मार्ग में व्यक्ति को समस्याओं का सामना करना पड़ता है वह मार्ग भक्ति की अपेक्षा कठिन जान पड़ता है। उपनिषद् उपासना के सिद्धान्त को मानता है इसी प्रकार गीता का भक्ति मार्ग भी उपासना को स्वीकार करता है। परब्रह्म के प्रति स्वयं को पूर्णरूप से समर्पित कर देना भी भक्ति है। भक्ति से ईश्वर को जाना जा सकता है अतः व्यक्ति को पूर्णरूप से भक्त बनना चाहिए। वह अपने समस्त कर्मों को कृष्ण के प्रति अर्पित करते हुए अपने मन को एकाग्र करे। गीता के

अनुसार जब साधक भक्ति मार्ग का अनुसरण करता है तो उसे स्वतः ही परब्रह्म की अनुभूति होने लगती है। भक्ति में ईश्वर की सगुण रूप से आराधना की जाती है। गीता में चार प्रकार के भक्त बताए गए हैं –

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 7/16)

हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! चार प्रकार के पुण्यात्मा मेरी सेवा करते हैं – आर्त अर्थात् पीड़ित, जिज्ञासु (आत्मतत्त्व को जानने की इच्छा रखने वाले), अर्थार्थी (अर्थकामी) एवं ज्ञानी। जब कोई व्यक्ति किसी परेशानी रोग आदि से पीड़ित होकर कष्ट से मुक्ति पाने के लिए परब्रह्म की भक्ति करता है तो उसे 'आर्त' कहते हैं। ज्ञान पाने की इच्छा रखने वाला भक्त 'जिज्ञासु' कहलाता है। सांसारिक पदार्थों एवं इच्छाओं की पूर्ति के लिए भक्ति करने वाला 'अर्थार्थी' भक्त की श्रेणी में आता है। ज्ञानी भक्त परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा करता हुआ निष्काम बुद्धि से भक्ति करते हैं। इन चारों प्रकार के भक्तों में से केवल ज्ञानी भक्त ही निष्काम बुद्धि से भक्ति करता है शेष तीनों प्रकार के भक्त सकाम बुद्धि से भक्ति करते हैं। कृष्ण कहते हैं कि चित्त को स्थिर करके सारी बुद्धि परब्रह्म में लगाओ। अन्य मार्गों के पालन में साधक को समस्या आ सकती है अतः उसे चाहिए कि वो भक्तियोग के नियमों का अच्छी प्रकार से पालन करते हुए कृष्ण को प्राप्त करने की इच्छा करे। यदि भक्तियोग के नियमों के पालन में कठिनाई अनुभव हो तो भक्त को चाहिए कि वो परब्रह्म के लिए ही समस्त कार्य करे। ईश्वर के लिए कर्म करते रहने से भक्त को सिद्धि प्राप्त होगी। इस प्रकार भक्त को चाहिए कि सदैव ईश्वर के लिए ही अपने कर्मों को समर्पित करे।

14.5 शब्दावली

सततयुक्ताः – भजन ध्यान में लगे हुए।

पर्युपासते – अति श्रेष्ठभाव से उपासना करते हैं।

अक्षरम् – जो नष्ट न हो।

परया – अतिशय श्रेष्ठ।

युक्ततमाः – योगियों में अति उत्तम योगी।

संनियम्य – ठीक प्रकार से वश में करके।

अनिर्देश्यम् – अकथनीय स्वरूप।

समबुद्धयः – समान भाववाले योगी।

अव्यक्तासक्तचेतसाम् – निराकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित्त वाले पुरुषों के।

अवाप्यते – प्राप्त की जाती है।

संन्यस्य – अर्पण करके।

नचिरात् – शीघ्र ही।

निवेशय – लगा।

समाधातुम् – स्थापना करने के लिए।

न शक्नोषि – समर्थ नहीं है।

आप्तुम् – प्राप्त होने के लिए।

मदर्थम् – मेरे लिए।

कुर्वन् – करते हुए।

14.6 उत्तरमाला

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. (क) सगुण और निर्गुण उपासना करने वालों में से कौन श्रेष्ठ है। 2. अर्जुन 3. तत् शब्द षष्ठी बहुवचन 4. यण् सन्धि 5. कर्मफलों का त्याग 6. समभाव 7. भज् धातु 8. युज् धातु 9. जन्म-मृत्यु के भवसागर से पार

सत्य/असत्य

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. असत्य 6. सत्य 7. असत्य

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. भक्ति 2. भक्तियोग 3. अर्जुन 4. मयि+आवेश्य 5. पञ्चमी विभक्ति

रिक्तस्थान

1. समाधातुं 2. मदर्थमपि 3. सगुण/साकार 4. ईश्वर/कृष्ण/परमात्मा/परब्रह्म 5. नियन्त्रण/वश 6. घञ् 7. एक

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. छात्र स्वयं से करें।
2. छात्र स्वयं से करें।

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें –

1. श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमच्छाङ्करभाष्यादि सहित, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स
2. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर
3. श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
4. श्रीमद्भगवद्गीता, टीका सहित, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी
5. भारतीय दर्शन, प्रथम खण्ड, डॉ. राधाकृष्णन्, राजपाल प्रकाशन दिल्ली
6. अनुवाद चन्द्रिका, चक्रधर नौटियाल हंस, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 15 गीता 12वाँ अध्याय (11 से 20 श्लोक तक)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 श्लोक (11 से 20 श्लोक तक)

15.3 बोध प्रश्न

15.4 सारांश

15.5 शब्दावली

15.6 उत्तरमाला

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप : -

- श्रीमद्भगवद्गीता के भक्ति योग के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से आपको स्वयं के व्यक्तित्व के विकास हेतु भी सहायता प्राप्त होगी।
- आप जानेंगे कि श्रीमद्भगवद्गीता में भक्तियोग का क्या महत्त्व है।
- भक्तियोग में किस प्रकार का भक्त ईश्वर को प्रिय है इससे आप भलीभाँति परिचित होंगे।
- श्लोकों को पढ़ने का अभ्यास होगा।
- श्लोकों के उच्चारण करने से उच्चारण कौशल का विकास होगा।
- श्लोकों के उच्चारण से विद्यार्थियों को छन्द ज्ञान भी होगा।
- श्लोकों में आए सन्धि युक्त शब्दों का विच्छेद जानेंगे जिससे आपके व्याकरणात्मक ज्ञान में भी वृद्धि होगी।
- संस्कृत भाषाव्याकरण के मूलभूत तत्त्व सन्धि के अतिरिक्त विभक्ति, समास, प्रत्यय आदि के विषय में भी आपको जानकारी प्राप्त होगी।

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पढ़ा कि कृष्ण से अर्जुन यह जानना चाहते थे कि ईश्वर की उपासना का कौन सा मार्ग श्रेष्ठ है। ईश्वर की साकार रूप में पूजा की जाए अथवा ईश्वर को निर्गुण निराकार मानते हुए ही उनका ध्यान किया जाए। वस्तुतः भक्ति के इन दोनों मार्गों में अन्ततः तो मिलना परमेश्वर में ही है तथापि सगुण एवं निर्गुण भक्तिमार्ग में से सगुण मार्ग निर्गुण मार्ग की अपेक्षा अधिक सरल है। वैसे तो ईश्वर को सभी भक्त प्रिय हैं लेकिन उनमें से भी भक्ति के मार्ग पर अपने कर्मों का फल त्याग करने वाला भक्त अधिक प्रिय है। जब भक्ति पूर्णता की अवस्था तक पहुँचती है तब भक्त परब्रह्म में लीन होकर परमानन्द स्थिति में पहुँच जाता है। ईश्वर असीम है परन्तु भक्त की एक निश्चित सीमा है वह ससीम है। ईश्वर पूर्ण है और भक्त अपूर्ण। भक्त का अनन्यभाव ही भक्तियोग का प्रमुख तात्पर्य है। अनन्यभाव से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

15.2 श्लोक (11 से 20 श्लोक तक)

प्रस्तुत श्लोक में ईश्वर अपने प्रिय भक्त की विशेषताएँ बता रहे हैं –

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

अन्वय – अथ एतद् अपि कर्तुम् अशक्तः असि ततः मद्योगम् आश्रितः यतात्मवान् सर्वकर्मफलत्यागं कुरु।

पदार्थ – अथ = यदि, एतद् = इसको अपि = भी, कर्तुम् = करने में, अशक्तः = असमर्थ, असि = हो, ततः = तो, मद्योगम् = मेरी प्राप्तिरूप योग को, आश्रितः = अवलम्बित हुआ, यतात्मवान् = नियन्त्रित मनवाला, सर्वकर्मफलत्यागं = सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग, कुरु = करो।

अर्थ – यदि तुम मेरी प्राप्तिरूपी भक्ति में आश्रित होकर कर्म करने में असमर्थ हो तो अपने मन को नियन्त्रित करके अपने कर्मों के सभी फलों का त्याग करो।

व्याख्या – कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि मेरी भक्ति में रहते हुए कर्म करने में समस्या आ रही है तो उसका भी उपाय है कि तुम निष्काम कर्मयोग का आश्रय ग्रहण करो अर्थात् लौकिक या वैदिक जो भी तुम करो उसे केवल कर्म के लिए करो। वस्तुतः जो हमारे हाथ में नहीं है हम उसे पकड़ने का प्रयास करके प्रसन्न नहीं हो सकते। कर्म का फल परब्रह्म के अधीन है। यह स्वीकार करके व्यक्ति को परमशान्ति का अनुभव होता है। व्यक्ति का सारा चिन्तन केवल कर्म के प्रति ही

होता है। कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कह रहे हैं कि कर्मफलत्याग रूपी मार्ग अत्यन्त सरल है। इस मार्ग में न तो संसार का त्याग करना पड़ता है और न ही कर्मों को छोड़ना पड़ता है। व्यक्ति को चाहिए कि वह मात्र निष्काम भाव से बिना किसी फल की इच्छा के कर्म करता रहे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अथैतदप्यशक्तोऽसि – अथ + एतत् (वृद्धि) = अथैतद्+अपि+अशक्तः (यण् सन्धि) +असि (पूर्वरूप)= अथैतदप्यशक्तोऽसि।

अपि = अव्ययपद।

असि = अस् धातु लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

एतद् – एतद् शब्द प्रथमा एकवचन।

कर्तुम् = कृ धातु + तुमुन् प्रत्यय।

अशक्तः – न शक्तः इति अशक्तः नञ् समास।

मद्योगम् – मत् + योगम् (व्यञ्जन सन्धि) = मद्योगम् मया योगः मद्योगः तं तृतीया तत्पुरुष।

आश्रितः – आङ् उपसर्गपूर्वक श्रिञ् धातु + क्त प्रत्यय, पुँल्लिंग, प्रथम एकवचन।

यतात्मवान् – यत् + आत्मवान् = यतात्मवान् यतात्मन्+मतुप् प्रत्यय, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, यतश्चासौ आत्मा च यतात्मा, यतात्मा अस्ति अस्य अस्मिन् वा यतात्मवान्, यतात्मा+मतुप्।

कुरु = कृ धातु लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन।

सर्वकर्मफलत्यागं – कर्मणां फलानि कर्मफलानि षष्ठी तत्पुरुष, सर्वाणि च तानि कर्मफलानि च, सर्वकर्मफलानि कर्मधारय, तेषां त्यागः सर्वकर्मफलत्यागः तं सर्वकर्मफलत्यागम्, सर्वाणि कर्माणि सर्वकर्माणि, कर्मधारय। सर्वकर्मणां फलं सर्वकर्मफलम्, षष्ठी तत्पुरुष। सर्वकर्मफलस्य त्यागः, सर्वकर्मफलत्यागः, तम् सर्वकर्मफलत्यागं, षष्ठी तत्पुरुष।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।

ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

अन्वय – अभ्यासात् हि ज्ञानं श्रेयः ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते। ध्यानात् कर्मफलत्यागः त्यागात् अनन्तरं शान्तिः।

पदार्थ – अभ्यासात् = अभ्यास से, हि = निश्चय ही, ज्ञानं = ज्ञान, श्रेयः = श्रेष्ठ, ज्ञानात् = ज्ञान से, ध्यानं = ध्यान, विशिष्यते = विशिष्ट होता है। ध्यानात् = ध्यान

से, कर्मफलत्यागः = समस्त कर्म के फलों का परित्याग, त्यागात् = ऐसे त्याग से, अनन्तरं = तत्पश्चात्, शान्तिः = शान्ति।

अर्थ – मर्म को न जानकर किए गए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है। ज्ञान से परब्रह्म का ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी श्रेष्ठ है कर्म फलों का परित्याग। क्योंकि ऐसे त्याग के तुरन्त बाद मनुष्य को परम शान्ति प्राप्त होती है।

व्याख्या – कृष्ण द्वारा दिए गए इस उद्बोधन को समझने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि अभ्यास, ज्ञान, ध्यान और कर्मफलत्याग इन सभी का अन्योन्य क्रम और अभिन्न सम्बन्ध है। क्योंकि ज्ञान से युक्त अभ्यास नाम स्मरण आदि तथा अभ्यास से युक्त ज्ञान ही स्थिर ध्यान होने का हेतु बनता है और जब स्मरण शब्द स्वर पर ध्यान स्थित हो जाता है तब कर्म के फलों का त्याग स्वयमेव हो जाता है। अर्जुन को समझाते हुए कृष्ण कहते हैं कि अभ्यास से सफलता मिल सकती है परन्तु अभ्यास का मार्ग बड़ा दीर्घ है। ज्ञान का मार्ग छोटा तो है लेकिन ज्ञान के मार्ग से भी सत्य का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। शब्द से जो भी हमें पता चलता है वह सब परोक्ष ज्ञान है। इसीलिए गीता के अनुसार ज्ञान से ध्यान को उत्कर्ष बताया गया है क्योंकि ध्यान से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसके बाद कर्म फलों के त्याग को ध्यान से भी अधिक उत्तम बताया गया है। कारण यह है कि ध्यान स्वयं एक साधना है हम अधिक देर तक ध्यान में नहीं बैठ सकते। आप स्वयं सोचिए कि आप भला कितनी देर तक ध्यान लगा सकते हैं? दूसरी बात यह भी है कि ध्यान सरल भी नहीं है आप जितनी देर तक ध्यान लगायेंगे उतने ही समय तक शान्ति बनी रहेगी जैसे ही ध्यान भंग होगा शान्ति भी भंग हो जाएगी। जबकि कर्म के फल की इच्छा को सदैव के लिए त्यागा जा सकता है। कर्म फलों के त्याग से होने वाली शान्ति सदा बनी रह सकती है। कर्म के फल की इच्छा को ही छोड़ देना सरल मार्ग है इसलिए कृष्ण ने इस मार्ग को श्रेष्ठ बताया है। स्पष्ट है कि जब कर्म के फल के प्रति कोई मोह, लालसा, आसक्ति मन में नहीं बची है तो मन की स्थिति पूर्णरूप से शान्त हो जाती है और यही स्थिति परब्रह्म को प्राप्त करने की आधारशिला है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अभ्यासात् – अभ्यासः शब्द पुँल्लिंग, पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

ज्ञानं – ज्ञानम् शब्द नपुंसकलिंग प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

श्रेयो – श्रेयस् नपुंसकलिंग प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

ज्ञानात् – ज्ञानं शब्द नपुंसकलिंग पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

विशिष्यते – वि उपसर्ग+ शिस् धातु + यक् (कर्मणि) लट् प्रथम पुरुष एकवचन।

ध्यानात् – ध्यान शब्द नपुंसकलिंग पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

कर्मफलत्यागः – कर्मणां फलं कर्मफलं तस्य त्यागः कर्मफलत्यागः षष्ठी तत्पुरुष।

त्यागात् – त्यज् धातु से घञ् प्रत्यय त्यागः शब्द शब्द पुंल्लिंग पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

अनन्तरं – अव्यय पद, न अन्तरं इति अनन्तरं नञ् समास।

त्यागाच्छान्तिः – त्यागात् + शान्तिः = त्यागाच्छान्तिः (विसर्ग सन्धि) ।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३ ॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४ ॥

अन्वय – यः सर्वभूतानाम् अद्वेष्टा मैत्रः करुणः एव च निर्ममः निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी सततं संतुष्टः योगी दृढनिश्चयः मयि अर्पितमनोबुद्धिः मद्भक्तः स मे प्रियः।

पदार्थ – यः = जो, सर्वभूतानाम् = समस्त जीवों के प्रति, अद्वेष्टा = द्वेष न करने वाला, मैत्रः = मैत्रीभाव वाला, करुणः = दयालु, एव = ही, च = और , निर्ममः = स्वामित्व की भावना से रहित, निरहङ्कारः = अहंकार से रहित, समदुःखसुखः = सुख-दुःख में समान भाव रखने वाला, क्षमी = क्षमाशील, सततं = निरन्तर, संतुष्टः = संतोषयुक्त, योगी = भक्तियोग में निरत, दृढनिश्चयः = पक्के निश्चय वाला, मयि = मुझमें, अर्पित मनोबुद्धिः = अर्पित मन और बुद्धि वाला, मद्भक्तः = मेरा भक्त, स = वह, मे = मुझे, प्रियः = प्यारा है।

अर्थ – जो पुरुष सभी प्राणियों में से किसी से भी द्वेष नहीं करता। जो सभी जीवों का दयालु मित्र है, जो अपने को स्वामी नहीं मानता एवं अहंकार से मुक्त है। जो सुख दुःख में समभाव रखता है अर्थात् सहिष्णु है सदैव आत्मतुष्ट रहता है, आत्मसंयमी है तथा जो दृढ़निश्चय वाला होकर मुझमें मन तथा बुद्धि को अर्पित किए हुए भक्ति में लगा रहता है, ऐसा भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

व्याख्या – उक्त दोनों श्लोकों में भगवान शुद्ध भक्त के बारे में अर्जुन को बताते हुए कहते हैं कि शुद्ध भक्त जीवन की किसी भी परिस्थिति में घबराता नहीं है। कठिन समय में भी वह भगवान् पर पूर्ण विश्वास रखता हुआ राग द्वेष से रहित शान्त भाव में रहता है। वह किसी के भी प्रति ईर्ष्या का भाव नहीं रखता। अपने शत्रु के प्रति भी शत्रुता का भाव नहीं रखता। वह सोचता है कि पूर्व में मेरे द्वारा किए गए बुरे कर्मों के कारण ही यह मेरा शत्रु बना है अतः कष्ट सहना ही अच्छा है। वह शरीर

को मिलने वाले कष्टों अर्थात् भौतिक कष्टों को कष्ट ही नहीं मानता क्योंकि उसे अच्छी तरह से पता है कि वह भौतिक शरीर नहीं है वह तो उसी परब्रह्म का कृपापात्र है। इस कारण वह किसी भी प्रकार के अहंकार से मुक्त रहता है। सुख और दुःख में समान भाव रखता है। परब्रह्म की कृपा से उसे जो भी प्राप्त होता है वह उसी में संतुष्ट रहता है उससे अधिक की इच्छा भी वह नहीं करता। इन्द्रियों के ऊपर उसका नियन्त्रण होने से वह दृढ़निश्चयी रहता है। वह झूठे तर्कों से परेशान नहीं होता क्योंकि कोई भी उसे भक्तिमार्ग के दृढ़संकल्प से हटा नहीं सकता। अपने मन तथा बुद्धि को वह परब्रह्म में ही लगा कर रखता है। हे अर्जुन! ऐसे भक्त मुझे अत्यधिक प्रिय हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

सर्वभूतानाम् – सर्वे च ते भूताः सर्वभूताः तेषां सर्वभूतानाम् कर्मधारय समास, पुंल्लिंग षष्ठी बहुवचन।

अद्वेष्टा – न द्वेष्टा इति अद्वेष्टा नञ् समास।

मैत्रः – मित्र एव मैत्रः, मित्र + अण् प्रत्यय।

करुणः – करुणः शब्द पुंल्लिंग प्रथमा, एकवचन।

एव – अव्यय।

च – अव्यय।

निरहङ्कारः – निर्गतः अहङ्कारः यस्मात् सः निरहङ्कारः, बहुव्रीहि समास, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति,एकवचन।

निर्ममः – निर्गतः ममत्वं यस्मात् सः निर्ममः, बहुव्रीहि, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

समदुःखसुखः – दुःखं च सुखं च, दुःखसुखे, द्वन्द्वः, समे दुःखसुखे यस्य सः, समदुःखसुखः, बहुव्रीहि समास।

क्षमी – क्षमा अस्ति अस्य अस्मिन् वा इति क्षमी, क्षमा+घिनुण् (इन्) प्रत्यय = क्षमी पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति,एकवचन।

सततम् – अव्यय पद।

संतुष्टः – सम् उपसर्ग + तुष् धातु + क्त प्रत्यय।

योगी – युज् धातु + योगः अस्ति अस्य इति योगी योग+इनि = योगिन् पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति एकवचन।

दृढ़निश्चयः – दृढः निश्चयः यस्य सः दृढनिश्चयः षष्ठी तत्पुरुष।

मय्यर्पित – मयि + अर्पित = मय्यर्पित (यण् सन्धि)।

अर्पितमनोबुद्धि – मनः च बुद्धिश्च मनोबुद्धी, द्वन्द्वः। अर्पिते मनोबुद्धी येन सः अर्पितमनोबुद्धिः, बहुव्रीहि समास।

मद्भक्तः – मम भक्तः मद्भक्तः, षष्ठी तत्पुरुष।

स – तत् शब्द पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति एकवचन।

मे – अस्मद् शब्द पुँल्लिंग,षष्ठी विभक्ति एकवचन।

प्रियः – प्रियः शब्द पुल्लिंग प्रथमा एकवचन।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

अन्वय – यस्मात् लोकः न उद्विजते च यः लोकात् न उद्विजते च यः हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः स मे प्रियः।

पदार्थ – यस्मात् = जिससे, लोकः = लोग, न = नहीं उद्विजते = उद्विग्न होता है, च = और, यः = जो, लोकात् = लोगों से, न = नहीं, उद्विजते = उद्विग्न होता है, च = और, यः = जो, हर्षामर्षभयोद्वेगैः = सुख, असहिष्णुता, भय तथा संक्षोभ से, मुक्तः = मुक्त, स = वह, मे = मेरा, प्रियः = प्रिय।

अर्थ – जिससे लोग उद्विग्न नहीं होते हैं तथा जो स्वयं भी लोगों से उद्विग्न नहीं होता है और जो आनन्द, असहिष्णुता, भय तथा संक्षोभ से मुक्त है, वह भक्त मुझको प्रिय है।

व्याख्या – उक्त श्लोक में भक्त के अन्य गुणों का वर्णन किया गया है। वस्तुतः भक्त का आचरण उसकी दिनचर्या, व्यवहार आदि सब कुछ सभी के हित के लिए होना चाहिए। उसका कोई भी कार्य ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे किसी अन्य को किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचे। इसके अतिरिक्त यदि अन्य लोग उस भक्त को परेशान करते हैं अथवा विचलित करने का प्रयास करते हैं तो भी वह परेशान नहीं होता क्योंकि उसका समस्त व्यवहार परब्रह्म की कृपा से ही है। कृष्ण की भक्ति में लीन ऐसे भक्त को कोई भी विचलित नहीं कर सकता। कृष्ण को ऐसे भक्त प्रिय हैं जो सुख-दुःख, मान-अपमान, जय-पराजय, यश-अपयश आदि सभी स्थितियों में समान भाव रखते हैं। प्रत्येक कार्य-कलाप को वे परब्रह्म की ही महिमा मानकर प्रत्येक परिस्थिति में सदैव अटल एवं अविचल रहते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

यस्मात् – यत् शब्द पुँल्लिंग, पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

लोकः – लोकः शब्द पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

उद्विजते – उत् उपसर्ग विज् धातु, लट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन।

लोकात् – लोकः शब्द पुँल्लिंग, पञ्चमी विभक्ति, एकवचन।

हर्षामर्षभयोद्वेगैः – हर्षश्च अमर्षश्च भयं च उद्वेगश्च हर्षामर्षभयोद्वेगाः, तैः हर्षामर्षभयोद्वेगैः, द्वन्द्व समास, पुंल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

भयोद्वेगैः – भय + उद्वेगैः = भयोद्वेगैः (गुण सन्धि) ।

मुक्तः – मुच् धातु +क्त प्रत्यय पुंल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

अन्वय – यो मद्भक्तः अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनः गतव्यथः सर्वारम्भपरित्यागी, स मे प्रियः।

पदार्थ – यः = जो, मद्भक्तः = मेरा भक्त, अनपेक्षः = इच्छाओं से रहित, शुचिः = पवित्र, दक्षः = निपुण, उदासीनः = पक्षपात से रहित, गतव्यथः = सारे कष्टों से मुक्त, सर्वारम्भपरित्यागी = समस्त प्रयत्नों का परित्याग करने वाला, स = वह, मे = मेरा, प्रियः = प्रिय है।

अर्थ – मेरा जो भक्त आकांक्षाओं से रहित बाहर-भीतर से शुद्ध, निपुण, पक्षपातरहित समस्त कष्टों से मुक्त है। जो किसी फल के लिए प्रयत्नशील नहीं रहता वह मुझे प्रिय है।

व्याख्या – कृष्ण बताते हैं कि जो भक्त यह सोचकर कि जो भी कार्य हो रहे हैं वह सब परमात्मा की इच्छा से ही हो रहे हैं मैं केवल साधन मात्र हूँ। इसी भाव से वह सारे कार्य करता है। उसे किञ्चित् मात्र भी यह अहंकार नहीं होता कि इन समस्त कार्यों में उसका कोई भी योगदान है। वह सदैव चिन्तामुक्त रहता है। वह जानता है कि उसका शरीर भी एक उपाधि मात्र है अतः शारीरिक कष्ट आने पर भी वह घबराता नहीं है। वह किसी फल अथवा यश आदि के लिए कार्य नहीं करता, ऐसा भक्त ही कृष्ण को प्रिय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अनपेक्षः – न विद्यते अपेक्षा यस्य सः अनपेक्षः, बहुव्रीहि समास, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

शुचिः – शुचिः शब्द पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

दक्षः – दक्षः शब्द पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

उदासीनः – उद् उपसर्ग + आस् धातु +शानच् प्रत्यय पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति,

एकवचन।

गतव्यथः – गता व्यथा यस्य सः गतव्यथः, बहुव्रीहि समास।

सर्वारम्भाः – सर्वे च ते आरम्भाश्च सर्वारम्भाः, कर्मधारय समास।

सर्वारम्भा परित्यागी – सर्वारम्भाणां परित्यागी सर्वारम्भपरित्यागी, षष्ठी तत्पुरुष समास।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

अन्वय – यः न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् स मे प्रियः।

पदार्थ – यः = जो, न = कभी नहीं, हृष्यति = हर्षित होता है, न = न कभी, द्वेष्टि = द्वेष करता है, न = नहीं, शोचति = पछतावा करता है, न = नहीं, काङ्क्षति = इच्छा करता है, शुभाशुभपरित्यागी = शुभ तथा अशुभ का परित्याग करने वाला, भक्तिमान् = भक्ति से युक्त अर्थात् भक्त, स = वह, मे = मेरा, प्रियः = प्रिय है।

अर्थ –जो न कभी प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है, जो न तो पछतावा करता है, न इच्छा करता है तथा शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार की वस्तुओं का परित्याग कर देता है, भक्ति से युक्त वह पुरुष मुझे प्रिय है।

व्याख्या – शुद्ध भक्त की विशेषता होती है कि वह सांसारिक चीजों की प्राप्ति से न तो प्रसन्न होता है और न ही किसी प्रकार की हानि होने पर वह दुःखी होता है। किए गए कार्यों के प्रति अथवा किसी वस्तु के न मिलने पर, कोई लाभ का कार्य समय पर न होने पर इत्यादि ऐसी उन सभी स्थितियों में जिनमें सामान्य व्यक्ति निराश हो जाते हैं, शुद्ध भक्त पछतावा नहीं करता और न ही वह किसी अभीष्ट कार्य की इच्छा करता है। पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ आदि सभी प्रकार के कर्मों से वह सदा ही दूर रहता है। इस प्रकार वह भक्त केवल भक्ति में ही लगा रहता है, ऐसा भक्त ही परमेश्वर को प्रिय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

हृष्यति – हृष् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

द्वेष्टि – द्विष् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

शोचति – शुच् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

काङ्क्षति – काङ्क्ष् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

शुभाशुभपरियागी – शुभं च अशुभं च शुभाशुभे, द्वन्द्व समास, शुभाशुभयोः परित्यागी, शुभाशुभपरित्यागी, षष्ठी तत्पुरुष समास।

भक्तिमान्यः – भक्ति + मतुप् प्रत्यय = भक्तिमत् पुंल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

अन्वय – शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः समः शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी येन केनचित् सन्तुष्टः अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् नरः मे प्रियः।

पदार्थ – शत्रौ = शत्रु के विषय में, च = और, मित्रे = मित्र के विषय में, च = और, तथा = उसी प्रकार, मानापमानयोः = मान तथा अपमान में, समः = समान, शीतोष्णसुखदुःखेषु = सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख में, समः = समान, सङ्गविवर्जितः = आसक्ति से रहित, तुल्यनिन्दास्तुतिः = निन्दा तथा स्तुति को समान समझने वाला, मौनी = मौन का आचरण करने वाला, येन केनचित् = जिस किसी से भी, सन्तुष्टः = सन्तुष्ट, अनिकेतः = बिना घर वाला, स्थिरमतिः = स्थिर बुद्धि वाला, भक्तिमान् = भक्ति से युक्त, नरः = मनुष्य, मे = मेरा, प्रियः = प्रिय है।

अर्थ – जो मित्रों तथा शत्रुओं के विषय में समान भाव रखता है। जो मान तथा अपमान, शीत तथा गर्मी, सुख तथा दुःख, यश तथा अपयश में समभाव रखता है, जो निन्दा-स्तुति को समान समझने वाला मौन का आचरण करने वाला और जिस किसी भी कारण से संतुष्ट होने वाला, जो घर से विहीन है, स्थिर बुद्धि वाला है तथा जो भक्ति में संलग्न है, वह मुझे प्रिय है।

व्याख्या – मानव का स्वभाव होता है कि जब उसकी प्रशंसा की जाती है तो वह खुश होता है और जब उसकी निन्दा होती है तो वह परेशान हो जाता है, तनाव में आ जाता है। इसके विपरीत जो भक्त होता है वह मान-अपमान, यश-अपयश से प्रभावित नहीं होता। वह अत्यन्त धैर्यवान् होता है। उसके लिए सुख-दुःख एक जैसे ही हैं। वह कभी भी किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रखता। भक्त की विशेषता बताते हुए कृष्ण ने कहा है कि ऐसा भक्त जो सदैव मौन रहता है। यहाँ मौन रहने का तात्पर्य यह है कि शुद्ध भक्त कभी भी अनर्गल प्रलाप नहीं करता वह परब्रह्म की भक्ति के अतिरिक्त अन्य व्यर्थ की बातों को करने की अपेक्षा मौन रहकर ही भक्ति में मग्न रहता है। उसका बोलना परब्रह्म के ही निमित्त होता है। वह प्रत्येक परिस्थिति में सन्तुष्ट रहता है। धूप हो या वर्षा हो, आँधी हो या तूफान हो, भरपेट भोजन मिले अथवा भोजन न मिले, इन सबका प्रभाव भक्त पर नहीं पड़ता। वह जीवन निर्वाह करने के लिए घर की चिन्ता नहीं करता वह वन में भी रह सकता है

और पेड़ के नीचे भी। उसे झोपड़ी मिले अथवा राजभवन इन सबके प्रति वह कभी आसक्त नहीं रहता क्योंकि वह अपने संकल्प और ज्ञान में दृढ़ होता है। सभी प्राणियों के हित की कामना से वह अपना सर्वस्व परब्रह्म के प्रति अर्पित करते हुए घर में रहते हुए भी अनासक्त भाव से बिना घर वाला अर्थात् अनिकेत है। उक्त समस्त गुणों को धारण करने वाला भक्त ही ईश्वर को प्रिय है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

शत्रौ – शत्रुः शब्द पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

मित्रे – मित्रम् शब्द नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

मानापमानयोः – मानं च अपमानं च मानापमाने तयोः मानापमानयोः, द्वन्द्व समास।

शीतोष्णसुखदुःखेषु – शीतं च ऊष्णं च सुखं च दुःखं च शीतोष्णसुखदुःखानि तेषु शीतोष्णसुखदुःखेषु द्वन्द्व समास नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन।

सङ्गविवर्जितः – सङ्गेन विवर्जितः सङ्गविवर्जितः, तृतीया तत्पुरुष समास।

तुल्यनिन्दास्तुतिः – निन्दा च स्तुतिश्च निन्दास्तुती, द्वन्द्व समास, तुल्ये निन्दास्तुतिर्यस्य सः तुल्यनिन्दास्तुतिः, बहुव्रीहि समास।

मौनी – मौनम् अस्यास्तीति मौनी, मुनेर्भावः मौनम् मौनी। मौन+इनि प्रत्यय।

येन – यत् शब्द पुँल्लिंग, तृतीया विभक्ति,एकवचन।

सन्तुष्टः – सम् + तुष् +क्त प्रत्यय, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

अनिकेतः – न विद्यते निकेतः यस्य सः अनिकेतः, बहुव्रीहि समास।

स्थिरमतिः – स्थिरा मतिः यस्य सः स्थिरमतिः, बहुव्रीहि समास।

भक्तिमान् – भक्तिः अस्यास्तीति भक्तिमान् भक्तिः + मतुप् प्रत्यय, पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

अन्वय – तु ये श्रद्दधानाः मत्परमाः भक्ताः यथोक्तम् इदं धर्म्यामृतं पर्युपासते ते मे अतीव प्रियाः।

पदार्थ – तु = और, ये = जो, श्रद्दधानाः = श्रद्धा करने वाले, मत्परमाः = मुझे ही अपना परम लक्ष्य मानने वाले, भक्ताः = भक्तजन, यथोक्तम् = जैसा कहा गया है, इदं = यह, धर्म्यामृतं = धर्मपूर्ण अमृत को, पर्युपासते = भली प्रकार से उपासना करते हैं, ते = वे, मे = मेरे, अतीव प्रियाः = अत्यधिक प्रिय हैं।

अर्थ – और जो श्रद्धा करने वाले तथा मुझे ही अपना परम लक्ष्य मानने वाले भक्त धर्मपूर्ण अमृतरूप इस ज्ञान का उक्तानुसार भली प्रकार सेवन करते हैं वे भक्त मुझे अत्यधिक प्रिय हैं।

व्याख्या – पूर्व में कहे गए धर्मसमुदाय का फल सहित उपसंहार करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो पुरुष इस धर्ममय अमृत को जैसा मैंने बताया है उसी प्रकार अर्थात् यथायोग्य रीति से ग्रहण करता है साथ ही उस पर श्रद्धा करते हुए मेरे परायण हुए जो भक्त उसकी उपासना करते हैं, उसका अनुष्ठान करते हैं वे मुझे अत्यधिक प्रिय हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

धर्म्या – धर्म + यत् प्रत्यय = धर्म्या।

भक्ताः – भज् धातु + क्त प्रत्यय भक्तः पुँल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

श्रद्दधानाः – श्रत् शब्द + धा धातु + शानच् प्रत्यय।

मत्परमाः – अहं परमः येषां ते मम परमाः मत्परमाः, षष्ठी तत्पुरुष।

यथोक्तम् – यथा + उक्तम् = यथोक्तम्, गुणसन्धि।

इदम् – इदम् शब्द नपुंसकलिंग प्रथमा, विभक्ति, एकवचन।

धर्म्यामृतमिदम् – धर्म्या+अमृतम् (दीर्घसन्धि) = धर्म्यामृतम्+इदं (वर्णसंयोग) = दीर्घामृतमिदम्।

अतीव = अति + इव = अतीव, दीर्घ सन्धि।

15.3 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. चित्त को संयमित करते हुए क्या होने का निर्देश भगवान देते हैं –

   (क) ज्ञानवान्

   (ख) यतात्मवान्

   (ग) शौर्यवान्

   (घ) अनात्मवान्

2. कुर्वन् में प्रत्यय है -

   (क) शतृ प्रत्यय

   (ख) क्त्वा प्रत्यय

(ग) ल्यप् प्रत्यय

(घ) शानच् प्रत्यय

3. अथैतद् का क्या विच्छेद होगा ?

(क) अथ+ ऐतद्

(ख) अथै+ तद्

(ग) अथे+एतद्

(घ) अथ+एतद्

4. ईश्वर को कैसा भक्त प्रिय है ?

(क) जो सबके प्रति ईर्ष्या भाव रखे।

(ख) जो किसी के प्रति द्वेष भाव न रखे।

(ग) जो अहंकारी हो।

(घ) जो सुख दुःख में भिन्न-भिन्न भाव रखे।

5. कैसा भक्त ईश्वर को अत्यन्त प्रिय है ?

(क) फल प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील।

(ख) फल प्राप्ति के लिए संलग्न।

(ग) फल प्राप्ति का परित्याग करने वाला।

(घ) इनमें से कोई नहीं।

6. शीत+ऊष्णः की सन्धि क्या होगी ?

(क) शीतौष्णः

(ख) शीतोष्णः

(ग) शीतूष्णः

(घ) शीतैष्णः

7. यथोक्तम् में सन्धि है –

(क) गुण सन्धि

(ख) दीर्घ सन्धि

(ग) यण् सन्धि

(घ) अयादि सन्धि

8. यस्मात् शब्द किस विभक्ति का है ?

(क) तृतीया विभक्ति

(ख) चतुर्थी विभक्ति

(ग) पञ्चमी विभक्ति

(घ) सप्तमी विभक्ति

अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. अनिकेतः शब्द का क्या अर्थ है ?
2. शुचिः शब्द का क्या अर्थ है ?
3. ज्ञानात् शब्द में कौन सी विभक्ति है ?
4. अभ्यास से क्या श्रेष्ठ है ?
5. कर्मफल के त्याग से क्या होता है ?
6. मन एवं बुद्धि को किस पर समर्पित करने वाला भक्त कृष्ण को प्रिय है।

सत्य/असत्य कथन

1. ईश्वर के स्वरूप के ध्यान से ज्ञान श्रेष्ठ है।
2. कर्म फलों का त्याग करना सबसे श्रेष्ठ है।
3. सुख-दुःख में समभाव रखने वाला व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता।
4. वस्तुओं का संग्रह करने वाला भक्त ईश्वर को प्रिय है।
5. च अव्ययपद है।
6. 'सततम्' का अर्थ निरन्तर होता है।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ईश्वर को कैसा भक्त प्रिय है विस्तार से लिखिए।
2. सभी कर्मों के फल त्याग को सर्वोत्तम क्यों कहा गया है?
3. भक्तियोग का सारांश लिखिए।

15.4 सारांश

ईश्वर ही स्रष्टा है। सभी का भरण-पोषण करने वाला है, धारण करने वाला है, सब कुछ परब्रह्म ही है, जब व्यक्ति ऐसा सोचता है तब उसके हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम

उत्पन्न होता है। जब जीव के हृदय में समस्त प्राणियों के प्रति द्वेष का अभाव हो जाता है तब उसमें स्वाभाविक मैत्रीभाव और दयाभाव उत्पन्न हो जाता है। परिणामस्वरूप ऐसे भक्त में न ममता रहती है और न ही अहंकार की भावना। कारण, भगवान् के भक्त का सभी जगह समभाव रहता है। सुख-दुःख आदि प्रत्येक अवस्था में वह एक समान भाव ही रखता है। वह न प्रसन्न होता है न करुणा से प्रभावित होता है न किसी से द्वेष करता है यहाँ तक कि शुभ-अशुभ कर्मों को भी त्याग देता है। उदाहरणार्थ - जैसे एक वृक्ष समान रूप से अपने को जल देने वाले और काटने वाले दोनों प्रकार की प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों को समान रूप से फल, छाया, लकड़ी आदि प्रदान करता है उसी प्रकार भक्त भी बिना किसी द्वेष के अपने कार्य में लगा रहता है।

मनुष्य वाणी से ही नहीं अपितु मन से भी बोलता रहता है। यदि वह बोलना बन्द भी कर दे परन्तु मन से विषयों का चिन्तन करता रहे तो यह बाह्य मौन है। परन्तु जब भक्त का चित्त ईश्वर में ही एकाकार हो जाता है तो यही मौन वास्तविक मौन कहलाता है। वही भक्त मौनी अर्थात् मननशील है जो स्थिरबुद्धि वाला श्रद्धायुक्त है। ऐसा ही भक्त भगवान् को अत्यधिक प्रिय है। भक्तियोग का मुख्य अर्थ है 'अनन्यभाव'। ईश्वर के अतिरिक्त किसी भी अन्य का भाव मन में न लाना ही अनन्यभाव है। इस अनन्यभावना से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। जिस परमात्मा से समस्त सृष्टि का संचालन हो रहा है, वह सनातन, परमेश्वर अनन्यभक्ति से ही प्राप्त होता है। उस सर्वशक्तिमान् ईश्वर में ही अपना सर्वस्व समर्पित करके सदा सन्तुष्ट रहना एवं अनन्य प्रेमपूर्वक सर्वदा उस परमेश्वर का स्मरण करते रहना ही अनन्य भक्ति है। इस अनन्यभक्ति से ही भक्त ईश्वर को प्राप्त करता है।

भक्तियोग के माध्यम से भक्त ईश्वर का सामीप्य पाना चाहता है। वह अपना सर्वस्व ईश्वर के प्रति समर्पित कर देता है। भक्तिमार्ग में भगवान् के सगुण रूप की उपासना होती है। इस मार्ग में ब्रह्म के अव्यक्त रूप की उपासना न होकर ईश्वर के व्यक्त रूप की उपासना होती है। ईश्वर की उपासना, भजन, अर्चन, ध्यान आदि करना भगवान् की भक्ति है। भगवान् पूर्ण एवं असीम है, भक्त अपूर्ण एवं ससीम है। भगवान् को ऐसे ही भक्त प्रिय हैं जो किसी भी फल की लालसा न करता हुआ अपने समस्त कर्मों के फलों का परित्याग कर देता है। भक्ति के मार्ग का अनुसरण करते हुए परमशक्ति को ही अपना लक्ष्य जानकर श्रद्धासहित सब कुछ समर्पित करते हुए संलग्न रहता है ऐसा भक्त कृष्ण को सर्वाधिक प्रिय है। इस प्रकार भक्तियोग में ईश्वर ने भक्ति को परमश्रेष्ठ मानते हुए उसी का अनुसरण करने हेतु प्रेरित किया है।

15.5 शब्दावली

अशक्तः – असमर्थ

यतात्मवान् – जीते हुए मन वाला

मद्योगम् – मेरे प्राप्तिरूप योग को

विशिष्यते – श्रेष्ठ है।

सर्वभूतानाम् – सभी प्राणियों में

निर्ममः – ममता से रहित

निरहंकारः = अहंकार से रहित

क्षमी – क्षमावान्

उद्विजते – उद्वेग को प्राप्त

अमर्ष – दूसरे की उन्नति को देखकर संताप होना अमर्ष कहलाता है।

अनपेक्षः – आकांक्षा से रहित

शुचिः – पवित्र

गतव्यथः – दुःखों से छूटा हुआ

उदासीनः – पक्षपात से रहित

शीतोष्णः – सर्दी और गर्मी

विवर्जितः – रहित है।

मौनी – मननशील

श्रद्दधानाः – श्रद्धायुक्त पुरुष

अतीव - अत्यधिक

15.6 उत्तरमाला

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. यतात्मवान् 2. शतृ प्रत्यय 3. अथ+एतद् 4. जो किसी के प्रति द्वेष भाव न रखे। 5. फल प्राप्ति का परित्याग करने वाला 6. शीतोष्ण 7. गुण सन्धि 8. पञ्चमी विभक्ति

अतिलघु उत्तरीय

1. घर 2. पवित्र 3. पञ्चमी विभक्ति 4. ज्ञान 5. शीघ्र ही परम शान्ति 6. ईश्वर/परब्रह्म/कृष्ण/परमात्मा पर

सत्य-असत्य

1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. सत्य

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. छात्र स्वयं से करें।

2. छात्र स्वयं से करें।

3. छात्र स्वयं से करें।

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें –

- श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमच्छाङ्करभाष्यादि सहित, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स
- श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर
- श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
- श्रीमद्भगवद्गीता, टीका सहित, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी
- भारतीय दर्शन, प्रथम खण्ड, डॉ. राधाकृष्णन्, राजपाल प्रकाशन दिल्ली
- अनुवाद चन्द्रिका, चक्रधर नौटियाल हंस, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY